मुफ्त चीजों का घातक चलन

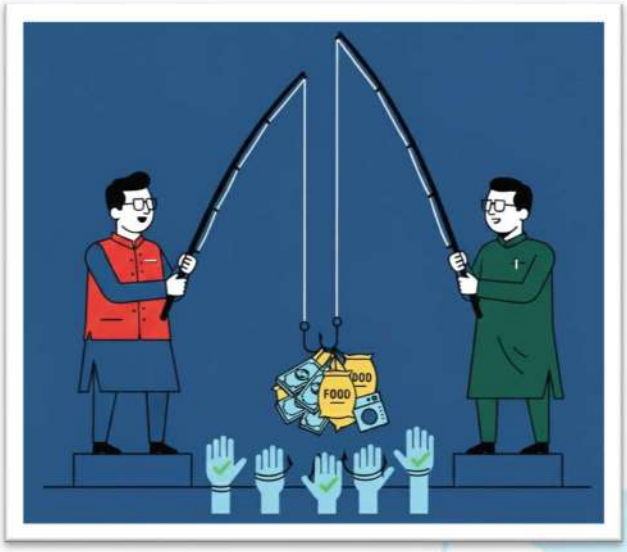

राजनीति में मुफ्त चीजें बांटने की एक परंपरा सी शुरू हो गई है। इसके परिणाम बहुत ही हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं। खैरात चुनाव जीता सकते हैं, लेकिन उनसे देश नहीं बनते।

इन उदाहरणों से इसे समझा जा सकता है -

- आंध्र प्रदेश को पता चल रहा है कि अपने बड़े कल्याण कार्यक्रम को लागू करना अनुमानित से कहीं ज्यादा महंगा है।

- महाराष्ट्र और कर्नाटक को कुछ समय बाद पता चल रहा है कि सोशल ट्रांसफर बढ़ाने से अपनी जरूरतों के खर्च के लिए कम गुंजाइश बची है।

मुफ्त रेवड़ी की राजनीति के चलते अब दल अपने घोषणा पत्र में नौकरियों की बात नहीं करते। न ही वे उत्पादकता बढ़ाने पर बात करते हैं। युवा का मानव पूंजी में बदलने पर उनकी कोई दूरदृष्टि नहीं है। इसके बजाय वे अस्थायी तोहफों की बौछार कर रहे हैं। ये न तो सरकार का भला करते हैं, न ही जनता का।

कैसे लगाम लगे -

- चुनाव आयोग को इसे रोकने के लिए एक रेफरी के तौर पर माना जा सकता है। लेकिन वह चुनाव प्रचार के बर्ताव को नियमित कर सकता है, प्रशासन को नहीं। इसके अलावा उसे राजनीतिक कल्याण कार्यक्रमों में नहीं घसीटा जाना चाहिए।

- सीएजी की मजबूरी ऑडिट रिपोर्ट में अंदरूनी देरी में है। मुफ्त वितरण की घोषणाओं और राजनीतिक डिविडेंड मिलने के काफी समय बाद आने वाले ऑडिट के नतीजे बेमतलब हो जाते हैं।

- मार्केट को ज्यादा उधार लेने के खतरे का अंदाजा लगाना चाहिए। वह ऐसा नहीं कर पाता, क्योंकि निवेशक मान लेते हैं कि केंद्र राज्यों को गलत नहीं करने देगा।

- शिक्षा, स्वास्थ्य, बुनियादी ढांचे और नौकरियों में निवेश को बढ़ाने के लिए केंद्र को लीडरशिप लेनी होगी। हमें मुफ्त रेवड़ियों पर एक नेशनल कोड ऑफ कंडक्ट की जरूरत है, जो यह बताए कि इन चीजों पर कितना खर्च किया जा सकता है, और उन्हें कब बांटा जा सकता है।

- दलों पर रेवड़ियों के लिए पैसे का स्रोत बताने का दबाव होना चाहिए।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित डी.सुब्बाराव के लेख पर आधारित। 28 नवंबर, 2025